इकाई 19 आधुनिक भारत की भाषाएँ

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जानकारी प्राप्त करेंगे:

- मुगल राजसत्ता से ब्रिटिश वर्चस्व की ओर संक्रमण की अवधि में भारतीय भाषाओं में कौन से परिवर्तन हुए,
- भाषागत विकास के साथ किस प्रकार भारतीय समाज में हो रहे नये ध्रुवीकरण की प्रक्रियाएं जुड़ी थीं,
- पाश्चात्य प्रभावों के अधीन भाषाओं के विकास का क्रम किस प्रकार प्रभावित हुआ, और
- आधुनिक भारतीय भाषाओं के अंतर्गत विकास के आधुनिक भारतीय इतिहास पर क्या प्रभाव पड़े।

19.1 प्रस्तावना

भारतीय भाषाएँ 18वीं और 19वीं सदी में महत्वपूर्ण विकास प्रक्रियाओं से गुजरीं। इसका आधुनिक भारतीय इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इस विकासक्रम में अत्यंत महत्वपूर्ण था क्लासकीय भाषाओं की अपेक्षा अत्यंत विशिष्ट रूप में स्थानीय भाषाओं का विकास। स्थानीय भाषाओं ने अपने प्राभाविक स्वरूप और नये गद्य साहित्य की उपलब्धि

की। आगे चलकर हम देखेंगे कि इन विकास-प्रक्रियाओं का आधुनिक भारत के सामाजिक/सांस्कृतिक ही नहीं, राजनीतिक इतिहास के घटनाक्रम से घनिष्ठ संबंध था।

19.2 मुगलसत्ता से ब्रिटिश वर्चस्व की ओर संक्रमण के प्रभाव

अठारहवीं सदी भारत में मुगल शासक वर्ग की भाषा फारसी थी। इसीलिए उसे राजभाषा का स्थान भी प्राप्त था। जहां तक उन्नीसवीं सदी के शिक्षित समुदाय की बात है, उससे अपने विद्वत्तापूर्ण विचारों को अभिव्यक्ति – कलासिकीय भाषाओं के माध्यम से दी – हिंदुओं ने संस्कृत में, मुसलमानों ने अरबी में और फारसी भाषा में हिंदू-मुसलमान दोनों ने। वर्नाक्यूलर के रूप से सुपरिचित और गैर-कलासिकीय भारतीय भाषाएँ द्रविड़ तथा भारत – आर्य (इंडो-एरियन) समूहों के अंतर्गत आती थीं। इन वर्नाक्यूलर भाषाओं में से कुछ – द्रविड़ समूह के अंतर्गत तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम तथा असम, बंगाल, उड़ीसा हिंदुस्तान, पंजाब, कश्मीर, सिंध, गुजरात और महाराष्ट्र की संस्कृत-आधारित वर्नाक्यूलर भाषाओं की सुविकसित काव्य-परंपरा थी। लेकिन इन भाषाओं का गद्य-साहित्य अभी अंकुरण-काल में था। जटिल तथा वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए वर्नाक्यूलर भाषाएं उस समय तक परिपक्व नहीं बनीं थीं। मुगल परंपरा के स्थान पर ब्रिटिश वर्चस्व की प्रतिष्ठा और 1835 में अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में नीति-निर्धारण से इन सभी भाषाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए, कुछ में अन्य भाषाओं की अपेक्षा पहले। बंगाली में उन्नीसवीं सदी के आरंभ में, मराठी में मध्य उन्नीसवीं सदी में, उर्दू, गुजराती, हिंदी, असमिया, उड़िया, सिंधी, तेलुगु और तमिल में उन्नीसवीं के अंतिम काल में, कन्नड़, पंजाबी, कश्मीरी, डोगरी में बीसवीं सदी में। इन सभी भाषाओं में भिन्न गति से महत्वपूर्ण परिवर्तन आ रहे थे।

19.2.1 समरूप मुद्रण लिपि और प्रामाणिक भाषा रूप की स्वीकृति

भारत के प्रत्येक भाषाई क्षेत्र में विभिन्न बोलियों का सम्मिश्रण था और आरंभ में कोई प्रामाणिक भाषा रूप नहीं था। न तो लिपि की एकरूपता थी। उदाहरण के लिए सिंधी भाषा में, जिसमें पहले कुछेक पुस्तकें ही लिखी गई थीं, लहंदा, गुरुमुखी, नागरी एवं फारसी लिपियों का बेतरतीब प्रयोग किया जाता था, जब तक कि 1851 में सिंध के ब्रिटिश प्रशासकों ने अरबी के साथ इस भाषा में न मिलने वाली कुछ ध्वनियों को इंगित करने वाले अक्षरों को मिलाकर अरबी-फारसी लिपि का आविष्कार नहीं कर दिया, जिसको हिंदू-मुसलमान दोनों ने ही अपनी पुस्तकों के मुद्रण के लिए अपनाया। राजपूताना से बिहार तक फैले विस्तृत क्षेत्र हिंदुस्तान की 'वर्नाक्यूलर' भाषा एक व्यापक श्रेणी थी जिसके अंतर्गत मारवाड़ी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, अवधी, भोजपुरी, मैथिली इत्यादि आती थी। इनसे ही क्रमशः हिंदी का प्रामाणिक रूप उभरा। उन्नीसवीं सदी काल में दिल्ली और मेरठ के आसपास में बोली जाने वाली उपभाषा, खड़ी बोली—ने एक प्रामाणिक भाषा का आधार दिया। भाषा के इस प्रामाणिक रूपों के उद्भव ने, जिसका पहले अस्तित्व नहीं था, स्वतंत्र भारत में राज्यों का भाषिक पुनर्संगठन संभव बनाया। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि उन्नीसवीं सदी के पहले इस समूचे क्षेत्र को अपनी परिधि में लेने वाली कोई प्रामाणिक वर्नाक्यूलर भाषा नहीं बनी थी।

19.2.2 गद्य साहित्य का विकास

लिपि एवं भाषा का स्तरीकरण 1800 के आसपास मुद्रित गद्यसाहित्य के विकास से घनिष्ठ रूप में जुड़ा है। इस प्रक्रिया को अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के साथ भारत की वर्नाक्यूलर भाषा-साहित्यों पर गहरे प्रभाव से और संवेग मिला। इसके बारे में अधिक चर्चा हम आगे करेंगे।

19.2.3 नये साहित्य रूपों की स्वीकृति

पश्चिम के गहन होते प्रभाव ने भारत की स्थानीय भाषाओं के साहित्य पर अंग्रेजी साहित्य की जबरदस्त छाप छोड़ी। विक्टोरियन इंग्लैंड में प्रभुत्वशाली-साहित्य रूपों का जैसे

1 विभिन्न भारतीय भाषाओं की लिपियाँ

उपन्यास और मुक्तक का भारत की भाषाओं में कोई समतुल्य नहीं था, जिनमें उपरोक्त रूपों को उत्साह से अपनाया गया। मलयालम साहित्य के एक इतिहासकार के अनुपम समकालीन मलयालम साहित्य के किसी भी मूल्यांकन प्रयास में निष्कर्ष की उपेक्षा नहीं की जा सकती: इसके सभी स्वरूपों एवं आंदोलनों को अपनी मूल प्रेरणा अंग्रेजी साहित्य से मिली थी। उसकी राय में उपन्यास, लघुकथा, नाट्य, निबंध, साहित्य समीक्षा, जीवनी, इतिहास, यात्रावृत्तांत आदि सारे साहित्य रूपों की अवधारणा अंग्रेजी के ढर्रे पर की गई है और—संक्षिप्त महाकाव्य, गीति, मुक्तक और एकलाप इत्यादि को भी अपने स्वर उसी स्रोत से मिले हैं। यह बात मलयालम भाषा के ही समान अन्य भाषाओं के लिए भी है। पुरातन रूपों से नवीन रूपों की ओर, प्रगति के साथ ही इन साहित्यों का इतिहास उपरोक्त नये रूपों और आंदोलनों का इतिहास बन गया, यद्यपि यह बात भी ध्यान में रखी जानी चाहिए कि इन महत्वपूर्ण रूपों से अप्रकाशित लोकसाहित्य की धारा अनवरत बहती रही।

19.3 भाषिक विकास और वर्ग-संबंध

प्रामाणिक भाषा रूपों की रचना ने शिक्षित मध्य वर्ग के सांस्कृतिक नेतृत्व को जन्म दिया और उनके निर्देशों के अधीन एक गतिशील प्रकृति की राजनीतिक–सामाजिक एकजुटता को आगे बढ़ाया। फिर भी, यह विरोधाभास ध्यान में रखा जाना चाहिए कि उपरोक्त प्रक्रिया ने सामाजिक ध्रुवीकरण को भी जन्म दिया जिससे नये मध्यवर्ग और जनसंख्या के निचले तबकों के बीच दूरी बढ़ गई।

19.3.1 बंगाली

यह बात नये गद्य रूपों के सृजन के समय से ही थी, जिसमें आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण के बौद्धिक क्रियाकलाप चलाये गये थे। ऐसा पहला बौद्धिक गद्य-साहित्य रूप–1815 के बाद का है, राजा राममोहन राय की बंगाली रचनाओं का माध्यम एक जटिल, कृत्रिम भाषा थी जो सब समुदाय की आम बोलचाल की भाषा से बहुत दूर, उनके लिए पूर्णत: अबोधगम्य थी। अतिजटिल तर्कसम्मत एवं वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति में समर्थ और परवर्तीकाल में ईश्वरचंद्र विद्यासागर, अक्षय कुमार दत्त, और बंकिम चंद्र चटर्जी (जिनके प्रथम उपन्यास दुर्गेशनंदिनी के प्रकाशन के साथ यह प्रक्रिया पूर्ण हुई) जैसे सृजनात्मक लेखकों द्वारा सुंदर और स्वाभाविक बना दिये जाने के बावजूद–यह साहित्य बंगाल के सामान्य जनसमुदाय के बोध के परे रहा। रवींद्रनाथ टैगोर भी–जब आधुनिक भारत के सर्वाधिक भौगोलिक काव्यरूपों के साथ परिदृश्य पर आये बंगाल के बुनकर, हस्तकार और किसान लोकगायकों के गीतों से ही अधिक आनंद विभोर होते थे। लोकभाषा रूपों और मध्यवर्ग की भाषा औपचारिक, लिखित साहित्यिक भाषा (साधुभाषा) और बोलचाल की भाषा में विभाजित हो गई। यद्यपि रवींद्रनाथ टैगोर ने बीसवीं सदी के तीसरे दशक में चलित भाषा (एवं बोलचाल दोनों की भाषा) को अपनाया, यह भाषा रूप भी मध्यवर्ग से ही संबंधित था।

19.3.2 गुजराती

यह परिघटना बंगाल तक ही सीमित नहीं थी। कन्हैया लाल मणिकलाल मुंशी की रचना गुजराती साहित्य का इतिहास (1935) की भूमिका में महात्मा गांधी ने गुजराती तथा अन्य भाषाओं के बीच विभेद, मध्य वर्ग द्वारा समझी और बोली जाने वाली भाषा और लोकगीतों के बीच अंतर को रेखांकित किया। उन्होंने गुजरात के लिखित साहित्य का चरित्रांकन वाणिज्य-वृत्ति वाले और आत्म-तुष्ट मध्यवर्ग के साहित्य के रूप में किया और यह मूल्यांकन किया कि वह अपने मूल स्वर में "स्त्रैण और ऐंद्रिक" है। उन्होंने संक्षेप में यह मत भी सामने रखा कि लिखित गुजराती साहित्य गुजरात के जनसमुदाय से अछूता बना रहा है, "जनसमुदाय की भाषा के बारे में हम कुछ भी नहीं जानते। उनकी बोलचाल को हम शायद ही समझ पाते हैं। उनके और हम मध्यवर्गीयों के बीच दूरी इतनी अधिक है कि हम तो उन्हें जानते नहीं, वे और भी कम जान पाते हैं कि हम क्या सोचते और कहते हैं।"

19.3.3 तमिल

महात्मा गांधी का आशय तमिल भाषा के उदाहरण से भी स्पष्ट होता है, जिसमें अनौपचारिक, बोलचाल की ठेठ भाषा साहित्यिक भाषा का स्वरूप नहीं ले सकी। इसके विपरीत, औपचारिक साहित्यिक भाषा का दैनिक जीवन में प्रयोग सामान्य तमिल भाषी नहीं करते थे, और न शिक्षित प्रबुद्ध तमिल, यद्यपि बंगाली शिक्षाप्राप्त तबकों में ऐसा आंशिक रूप में होता था। तमिल भाषा में बंगाली चलित भाषा का कोई समतुल्य रूप नहीं मिलता, ऐसी भाषा जिसका प्रयोग जनसंख्या का कम से कम हिस्सा, अर्थात् मध्यमवर्ग बोलने और लिखने दोनों के लिए ही करता हो। बल्कि, कामिल ज्वेलबिल के अनुसार बंगाली साधुभाषा, औपचारिक, लिखित साहित्यिक भाषा, का समतुल्य तमिल में मिलता है, जिसे शायद ही कोई बोलचाल में प्रयोग करता हो। अनेकानेक स्थानीय तथा सामाजिक-उपन्यास भी थे, जिनमें ब्राह्मणों की भाषा अन्य तबकों की भाषा से भिन्न थी।

मुख्य भारतीय लिपियों के कुछ शब्द

तमिल	உங்கள் பெயர் என்ன उङ्गळ् पेयर् ऍन्न • आप का नाम क्या है	
मलयालम	നിങ്ങളുടെ പേരെന്താണ് नि कलुडे पेरं एन्ताणं • तुम्हारा नाम क्या है	
कन्नड़	ನಿಮ್ಮ ಹೆಸರು ಏನು निम्म हेसरु एनु • आपका नाम क्या है	
तेलुगु	నీ పేరు ఏమి नि पेरू एमि = आप का नाम क्या है	
बंगला	আপনার নাম কি आपनार नाम कि = आपका नाम क्या है	
उड़िया	ସତ୍ୟମେବ ଜୟତେ सत्य मेव जयते	
गुजराती	સત્ય મેવ જયતે सत्य मेव जयते	
पंजाबी	ਮਕਾਨਦੀਆਂ ਕੱਚੀਆਂ ਕੰਧਾਂ मकान दियां कच्चियां कंधां	मकान की कच्ची दीवारें

2. मुख्य भारतीय लिपियों के कुछ शब्द

19.4 भाषा के अंतर्गत सामुदायिक ध्रुवीकरण

भाषिक व्यवहार से जुड़े—इन वर्गीय विभेदों का संबंध सामुदायिक विभेदों से भी था। साहित्य के प्रामाणिक भाषा रूप के अभ्युदय से विभिन्न तबकों के बीच दूरी और बढ़ गई। बंगाल का ही उदाहरण लें। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में प्रामाणिक, लिखित बंगाली भाषा रूप की रचना के पहले ही, अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में (अरबी तथा फारसी भाषा के

शब्दों से युक्त) दो भाषी अथवा मुसलमानी बंगला भाषा में लोकप्रिय साहित्य सामने आ चुका था। अन्य साधनों वाले सामान्य मुस्लिम जनसमुदाय ने इस साहित्य को संरक्षण दिया। यह पर्णत: पद्य बद्ध था और इसमें कोई गद्यरूप हमें नहीं मिलता। इसकी विषय वस्तु में आते थे मुस्लिम नीतिशास्त्र और पुरातन, विस्मयकारी-लोक आख्यान। पुठी के रूप में भी सुपरिचित दोभाषी साहित्य उन्नीसवीं सदी में प्रिंटिंग प्रेस के आने के साथ तेजी से विकास करने लगा लेकिन प्रमुखत: हिंदू मध्यवर्ग के साहित्य से इसकी सरणी बिलकुल अलग थी। किसी भी प्रकार के आधुनिकतावादी प्रभाव से यह अछूता बना रहता मीर मुसरफ हुसैन जैसे मुस्लिम नव मध्यम वर्ग से संबंधित लेखकों ने, जिन्होंने उन्नीसवीं सदी के अंतिम काल में लेखन कार्य शुरू किया, मुसलमानी बंगला के बनाम प्रामाणिक बंगाली भाषा रूप अपनाया। गुजरात में इन स्थितियों ने एक दूसरा ही मोड़ लिया। उन्नीसवीं सदी की प्रामाणिक गुजराती भाषा मुख्यत: नर्मदाशंकर जैसे हिंदू लेखकों की ही देन थी। इस क्षेत्र के फारसी और मुसलमान लेखकों ने इस भाषा को संवारने में कोई सचेत भूमिका नहीं निभाई। बल्कि अल्पसंख्यक समुदाय की साहित्यक ऊर्जा रोमांचक उपन्यासों और कथाओं तक सीमित नये फारसी-गुजराती रूपों और मुस्लिम-गुजराती साहित्य रूपों में संचारित हुई। महात्मा गांधी ने इन अलग-अलग साहित्यिक भाषाओं के आविर्भाव पर, और भाषिक स्वरूप पर इसके सांघातिक प्रभाव पर दु:ख के साथ टिप्पणी की है। लेकिन वे यह कहने के लिए भी बाध्य हुए कि इन दो धाराओं की अपेक्षा असंभव थी: "वे गुजरात के ऐसे अप्रदूषित स्रोत नहीं हैं। गुजराती साहित्य का कोई भी समीक्षक इन साहित्यिक कृतियों के अस्तित्व की उपेक्षा नहीं कर सकता जिसको सैकड़ों की संख्या में फारसी और मुस्लिम पढ़ते हैं और जो उनके आचरण को भी अंशत: निश्चित रूप देती हैं।"

लगभग इसी समय रवींद्रनाथ टैगोर ने भी नये बंगाली के मुस्लिम लेखकों द्वारा अरबी, फारसी और उर्दू शब्द अपनाकर भाषा के इस्लामीकरण के भरपूर प्रयास पर आपत्ति उठाई भाषा के विरूपण का यह प्रयास जिसको 1750-1900 के बीच के पुराने मुसलमानी बंगला काव्यरूप से भिन्न माना जाना चाहिए, अंतत: सफल नहीं हो पाया (यह रोचक तथ्य है कि आज के बंगलादेश में अपनाई गई बंगाली भाषा रवींद्रनाथ की भाषा के अधिक निकट है, उनके समकालीन मुस्लिम उलेमा (धार्मिक विद्वानों) द्वारा समर्थित भाषा की अपेक्षा)। लेकिन हिंदू मध्यवर्ग से बंगाल के निर्धन मुस्लिम समुदाय की दूरी ने इस भाषा रूप को उपरोक्त आलोचना के अधीन ला दिया। सुदूर दक्षिण और हिंदुस्तान में भी यही समस्या उभरी। ब्राहमणों की संस्कृतनिष्ठ तमिल भाषा और ब्राहमणेतर समुदाय की द्राविड़-निष्ठ तमिल के बीच ध्रुवीकरण सामने आया। "हिन्दुस्तान" की वर्नाक्यूलर भाषा का शुद्ध उर्दू और शुद्ध हिंदी रूपों में ध्रुवीकरण तो और भी सांघातिक था।

19.5 उर्दू और हिंदी का ध्रुवीकरण

हिंदुस्तान की वर्नाक्यूलर भाषा, हिंदुस्तानी अथवा हिंदी, जिसका उल्लेख मध्ययुग के अनेक शासक मुस्लिम अभिजन हिंदवी के रूप में करते हैं, पश्चिम में पंजाब-सिंध और पूर्व में बंगाल क्षेत्रों के बीच समूचे उत्तर भारत की प्रमुख संश्लिष्ट भाषा थी। इन मुस्लिम अभिजनों में से कइयों ने इस भाषा में काव्य रचना भी की। उदाहरण के लिये अकबर के दरबारी फैजी ने अनेक हिंदी पद्य रचनायें की थीं। ग्रियर्सन ने इसका वर्गीकरण विभिन्न मूल के चार विशिष्ट भाषा-समूह में किया था, जिसमें प्रत्येक के अंतर्गत अनेक उपभाषाएं आती it:

1) राजस्थानी—मेवाती, मारवाड़ी, जयपुरी, मालवी इत्यादि।
2) पश्चिमी हिंदी—बांगडू (हरियाणा), ब्रजभाषा (मथुरा), खड़ी बोली (दिल्ली और मेरठ) कन्नौजी (मध्य दोआब का निचला भाग), बुंदेली (बुंदेलखंड और नर्मदा घाटी का अधिकांश भाग), इत्यादि।
3) पूर्वी हिंदी—बैसवाड़ी, अथवा अवधी, बघेली, छतीसगढ़ी, इत्यादि।
4) बिहारी—मैथिली, भोजपुरी, मगही इत्यादि।

19.5.1 उर्दू भाषा का उद्‌भव और विकास

चूँकि दिल्ली सुल्तानों के समय से ही, दिल्ली क्षेत्र मुस्लिम सिपाहियों का मुख्यालय था, इस क्षेत्र और मेरठ की उपभाषा, खड़ी बोली, से ही फौजी छावनियों की सामान्य भाषा का विकास हुआ। तुर्की शब्द "उर्दू" का शाब्दिक अर्थ "छावनी-लश्कर" ही है। दक्खन क्षेत्र में मुस्लिम सैनिकों के प्रवेश के साथ ही इस लश्करी भाषा का प्रसार वहां भी हुआ। कालक्रम में हिंदुस्तानी क्षेत्र की सामान्य भाषा का एक साहित्यिक रूप "रेखता" अथवा "दक्खनी" भाषा के नाम से बीजापुर तथा गोलकुंडा की मुस्लिम राजशाहियों में उभरा। बहरहाल, मुगल साम्राज्य के अंतर्गत शासक समुदाय ने, जो बौद्धिक रूप से फारसी भाषा से जुड़े थे, लश्करों की भाषा में कोई रचना नहीं की। इसलिए यह उत्तर क्षेत्र की एक बोली ही बनी रही, इसमें कोई साहित्य नहीं रचा गया। अवधी और ब्रजभाषा ही हिंदुस्तान की उपभाषाएं थीं–जिनमें हिंदू और मुसलमान दोनों ही ने अधिकाधिक सक्रियता से काव्य रचना की। दिल्ली क्षेत्र की उपभाषा और लश्करों की भाषा को लिखित साहित्य एवं काव्य का स्वाभाविक माध्यम नहीं माना गया।

केवल फारसी भाषा को विद्वत चर्चा की भाषा मानने वाले मुगल साम्राज्य के अवसान के साथ ही स्थिति में परिवर्तन आया। दक्खनी में अपनी काव्य रचना के लिए विख्यात औरंगाबादवासी वली दक्खनी–1700 में दिल्ली आया। उस समय तक पहले केवल फारसी भाषा में रचना करने वाले दिल्ली के मुसलमान कवियों में अपनी एक वर्नाक्यूलर भाषा के पक्ष में रुझान बना चुके थे। फारसी भाषा के आधार पर उन्होंने इसका संवर्धन एवं परिष्कार शुरू किया। दिल्ली की खड़ी बोली, विशेषकर राजघराने से जुड़े दरबारियों नौकरों और सिपाहियों के बीच प्रयोग की जाने वाली बोली क्रमशः साहित्य-रचना की भाषा का रूप लेने लगी। कवियों और विद्वानों ने अभी तक अविकसित इस उपभाषा से अधिकांश अशिष्ट शब्द निकाल दिये और फारसी भाषा से अनेकानेक भाषित तत्व अपनाकर इसको समृद्ध बनाया। यह बात विरोधाभास पूर्ण है कि मातृभाषा के पक्ष में फारसी के विरुद्ध इस विद्रोह के कारण उर्दू और स्थानीय लोगों के बीच की दूरी कम होने के बजाए बढ़ गयी। अठारहवीं सदी के प्रथमार्द्ध के आरंभिक उर्दू कवि अपनी भाषा को कभी हिन्दी और कभी उर्दू की संज्ञा देते थे। इन दोनों के बीच विभेद अभी पूर्ण स्पष्ट नहीं हुआ था। इंशा अल्लाखान ने **रानी केतकी की कहानी** (1801) की रचना सरल एवं सामान्य हिन्दुस्तानी गद्य में की थी। अंग्रेजों के फोर्ट विलियम कालेज ने जब अप्रैल 1801 में इस भाषा के शिक्षण के लिए एक विभाग खोला, इसे हिंदुस्तानी विभाग का नाम दिया गया, जिससे उनका आशय उर्दू ही था। इस विभाग के अंतर्गत हिंदू जनसमुदाय से संपर्क के लिए ब्रजभाषा के शिक्षण का भी प्रावधान था। इसके अध्यक्ष गिलक्राइस्ट ने **हिन्दुस्तानी** (अर्थात् उर्दू) का मुस्लिम भाषा के रूप में और हिंदवी (अर्थात् हिन्दी) का हिंदू भाषा के रूप में स्पष्ट विभेद किया था। "हिन्दुओं का झुकाव स्वभावतः हिंदवी की ओर होगा, जबकि मुस्लिम निश्चय ही अरबी और फारसी का पक्ष लेंगे जिससे दोनों भाषा-शैलियां, दरबारी अथवा उच्च देशी अथवा पुरातन शैली उभरती हैं। हिंदुस्तानी के साथ उर्दू की समरूपता स्थापित करने का गिलक्राइस्ट का प्रयास समुचित नहीं था। जैसाकि ग्रियर्सन ने परवर्ती काल में "भारत का भाषा सर्वेक्षण" में संकेत दिया, हिन्दुस्तानी एक सीमित अर्थ में ऊपरी गंगा दोआब क्षेत्र की भाषा (खड़ी बोली) थी और एक व्यापक अर्थ में समूचे भारत की सामान्य भाषा थी। फारसी तथा देवनागरी दोनों ही लिपियों में लिखी जा सकने के कारण उर्दू की पहचान हिंदुस्तानी के एक विशेष रूप में बन गई, जिसमें फारसी के शब्द बहुतायत से आते हैं, जबकि हिंदी क्रमशः हिंदुस्तानी के ऐसे स्वरूप में परिवर्तित हो गई जिसमें संस्कृत शब्दों की बहुलता थी।

19.5.2 प्रामाणिक हिंदी का विकास

गिलक्राइस्ट ने अपने विभाग के दो भाषा मुंशियों, लल्लूलाल और सदल मिश्र को हिंदी में गद्यरचना का निर्देश देकर हिंदी के प्रामाणिकीकरण को प्रोत्साहन दिया। खड़ी बोली ने जिससे उर्दू भाषा भी निकली थी, वह आधार प्रदान किया जिसपर भाषा मुंशियों (उस समय के हिंदी पंडितों) को नये गद्य का विकास करना था। फोर्ट विलियम कालेज के पंडितों ने जिस भाषा की रचना की, वह दरअसल दिल्ली और मेरठ की उपभाषा का परिष्कृत-रूप मात्र नहीं थी, बल्कि यह एक नई साहित्यिक उपभाषा थी, उर्दू को अपना कर, इससे

फारसी एवं अरबी मूल के शब्द निकाल कर और उनके स्थान पर संस्कृत शब्दों की प्रतिष्ठा करके बनाई गई। गिलक्राइस्ट अरबी और फारसी शब्दों को वरीयता देता था, लेकिन परवर्ती काल में हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष बनने वाले प्राइस ने 1824 में इस बात पर बल दिया कि "हिंदवी" शब्द लगभग सभी संस्कृत से थे और–हिंदुस्तानी अथवा उर्दू शब्द अधिकांशत: अरबी और फारसी से। अंग्रेजों के निर्देशन में फोर्ट विलियम के हिंदी पंडितों ने एक संश्लिष्ट नई रचना, एक नई कृत्रिम भाषा की रचना की थी।

ग्रियर्सन ने प्रामाणिक अथवा उच्च हिंदी के प्रसंग में 1889 में यह मत सामने रखा "समूचे उत्तर भारत में यह साहित्यिक गद्य रचना का मान्य माध्यम बन चुकी है, लेकिन चूंकि यह कहीं की भी स्थानीय भाषा नहीं थी, काव्य रचना के लिए इसका सफल प्रयोग नहीं किया जा सका है। श्रेष्ठतम प्रतिभाओं ने इतना प्रयास किया है लेकिन वे भी इसकी कमियां दूर नहीं कर पाये हैं। इस प्रकार वर्तमान उत्तर भारत साहित्य का निम्नलिखित विशिष्ट परिदृश्य सामने रखता है। इसकी काव्य रचना सर्वत्र स्थानीय, उपभाषाओं, विशेषकर ब्रज, बैसवाड़ी और बिहारी में होती है और इसका गद्य एक समरूप कृत्रिम उपभाषा में

देवनागरी का विकास

ब्रा॰	दू॰श॰	चौ॰श॰	कु॰श॰	सा॰श॰	आ॰श॰	नं॰श॰	द॰श॰	ग्या॰श॰	बा॰श॰	ते॰श॰	प॰श॰	आधु॰
												अ
												आ
												इ
												ई
												उ
												ए
												ओ
												क
												ख
												ग
												घ
												ङ
												च
												छ
												ज
												झ
												ञ
												ट
												ठ
												ड

3. देवनागरी का विकास

लिया जाता है। यह गद्य-भाषा किसी भारत में जन्में व्यक्ति की मातृभाषा नहीं, बल्कि इस भाषा के आविष्कारकों की प्रतिष्ठा के कारण उन पर आरोपित हो चुकी है, इस तथ्य के फलस्वरूप कि इसमें लिखी गई आरंभिक पुस्तकें अत्यंत लोकप्रिय थीं और इसलिए भी कि यह अपने लिए ऐसा क्षेत्र पा सकीं जिसमें इनकी सर्वाधिक उपयोगिता थी।" प्रामाणिक हिंदी अपने काव्य-भंडार के साथ एक अधिक जीवंत भाषा बनी, लेकिन प्रक्रिया में समय लगा।

हिंदी और उर्दू के अधिकाधिक स्तरीकरण ने उनके बीच दूरी को पहले से और अधिक बना दिया। 1803 में हिंदी को उर्दू के समान ही दरबारी भाषा का स्तर मिल गया था, लेकिन 1837 में इस नियम को खत्म करके उर्दू को ही अदालत की भाषा रहने दिया गया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिंदी और नागरी के पक्ष में आंदोलन से मुसलमानों और हिंदुओं के बीच तनाव की स्थिति बन गई। हिंदी और उर्दू, दोनों ही भाषाओं में अपनी उपन्यास-रचनायें करने वाले मुंशी प्रेमचंद ने अपने देहावसान के एक साल पहले दुःख के साथ लिखा था: "यह फोर्ट विलियम कालेज की ही करतूत थी कि एक ही भाषा की दो शैलियों को दो भिन्न भाषाओं के रूप में मान्यता दी गई। हम यह कहने की स्थिति में नहीं कि उस समय इस निर्णय के पीछे किसी प्रकार की राजनीति काम कर रही थी अथवा दोनों भाषाएँ पर्याप्त रूप से भिन्न पथ अपना चुकी थीं। लेकिन जिस हाथ ने हमारी भाषा को विकसित किया, उसने इस प्रकार हमारे राष्ट्रीय जीवन को भी खंड-खंड कर दिया।"

19.5.3 पंजाब पर प्रभाव

ये प्रतिफल हिंदुस्तान के क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि पंजाब तक फैल गये जहां इनका पंजाबी साहित्य के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। पंजाब के मुसलमान कवियों ने पूर्वकाल में पंजाबी भाषा में उत्कृष्ट काव्य रचनाएं की थीं। पंजाबी भाषा में ही वारिस (1766) की रचना करने वाले वारिस शाह एक विशिष्ट उदाहरण है। पंजाब के प्रसिद्ध कवि मुहम्मद इकबाल ने भी अपनी आरंभिक कविताएं पंजाबी में लिखीं। उनके शिक्षक शमशुल-उलमा मीर हसन ने पंजाबी के बजाय उर्दू में लिखने की सलाह उन्हें दी। इकबाल उर्दू और फारसी भाषाओं में लिखने लगे और इस प्रकार उनकी अपनी ही मातृभाषा उनकी प्रतिभा के फलों से वंचित रह गई। सांप्रदायिक भेदभाव उग्र होने के साथ ही, पंजाबी, हिंदू हिंदी भाषा को और पंजाबी मुसलमान उर्दू भाषा को समर्पित हो गये।

बोध प्रश्न 1

1) मुगल राजसत्ता से ब्रिटिश वर्चस्व की ओर संक्रमण काल में भारतीय भाषाओं के विकास क्रम में आए मुख्य परिवर्तनों की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

....

....

....

2) उपरोक्त अवधि में भारतीय भाषाओं का विकास क्या एक समरूप प्रक्रिया थी?

....

....

....

3) जिससे हिंदी और उर्दू दोनों विकसित हुई हैं, वह उपभाषा है:

i) कन्नड़

ii) असमिया

iii) खड़ी बोली

iv) मेवाती

19.6 विविधता में एकता

उपरोक्त विवरण के बावजूद आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के अंतर्निहित स्वरूप का बोध उनकी आधारभूत एकता को ध्यान में रखे बिना नहीं किया जा सकता। जैसा जवाहरलाल नेहरू ने कहा था उनका मूल और संप्रेरण बहुत कुछ समान थे और वह बौद्धिक परिवेश भी जिनमें उनका विकास हुआ, एक जैसा था। उन सभी पर पाश्चात्य चिंतन का एक जैसा प्रभाव पड़ा था। विभिन्न मूलों वाली दक्षिण भारतीय भाषाएं भी—समरूप स्थितियों में विकसित हुई थीं। नेहरू के अनुसार, इनमें से प्रत्येक भाषा भारत के क्षेत्र विशेष की ही भाषा नहीं थी, बल्कि समूचे भारत की भाषा थी और इस देश के चिंतन, संस्कृति एवं विकासक्रम को उसके विविध रूपों में व्यक्त करती थी।

उन्नीसवीं सदी में स्तरीकृत अथवा उच्च रूपों के उदय के पहले और बाद के काल में भारत की विभिन्न भाषाओं के बीच गहन अंत:संबंध का अक्सर बोध नहीं किया जाता। सिखों के दसवें गुरू गोविंद सिंह (1675-1708) ने अपनी कविताएँ मुख्यत: हिन्दी (ब्रजभाषा) में लिखीं, लेकिन फारसी और पंजाबी में भी उन्होंने रचना की। और फिर गुजराती साहित्य के पुरातन से नये रूप तक संक्रमण की अवधि के श्रेष्ठतम कवि दयाराम (1767-1852) ने दूर-दूर तक यात्राएं कीं, गोकुल, मथुरा, वृंदावन, काशी और अन्य प्रसिद्ध तीर्थस्थलों पर गये और हिंदी, संस्कृत तथा पुरातन गुजराती के रचनाकारों का अध्ययन किया। अपनी भाषा में लिखने के अलावा उन्होंने हिंदी, ब्रज, मराठी, पंजाबी, संस्कृत और उर्दू में काव्य रचना की।

प्रामाणिक भाषा रूपों के अभ्युदय के बाद भी उनके बीच अंत:संबंध अधिकाधिक गहन बनता गया। समरूप पाश्चात्य प्रभावों के अधीन प्रत्येक भाषा में आधुनिक गद्य का विकास हुआ और प्रत्येक भाषा के उत्कृष्ट उपन्यासों का अध्ययन अन्य भाषाओं के उपन्यासकारों ने किया। बंकिम चंद्र चटर्जी ने एक आरंभिक आदर्श रूप प्रस्तुत किया और परवर्ती काल में शरतचंद्र चटर्जी की कृतियों का अनुवाद लगभग सभी भारतीय भाषाओं में हुआ और हजारों की संख्या में उनकी बिक्री हुई। एक परवर्ती उदाहरण थे रवींद्रनाथ टैगोर जो तमिल के सुब्रह्मण्यम भारती, मलयालम के कुमार आसान और हिंदी के छायावाद से जुड़े व्यापार विविधता वाले कवियों के प्रेरणास्रोत बने।

19.7 गद्य रूपों का विकास

वर्नाक्यूलर भाषाओं के मध्यकालीन लेखकों का मुख्य प्रभाव काव्य रचना के क्षेत्र में ही था। इसका आशय यह नहीं कि इस अवधि में गद्य का पूर्ण अभाव था। द्रविड़ भाषाओं में गद्य-लेखन की सुदीर्घ और निरंतर परंपरा थी। कुछ भारत-आर्य भाषाओं में भी साहित्यिक गद्य के छुटपुट नमूने मिलते हैं। लेकिन बंगाली, उड़िया, मैथिली, सिंधी इत्यादि में गद्य-साहित्य लगभग था ही नहीं। कुछ अपवादों के अलावा, उत्तर भारत की भाषाओं में लिखित गद्य के अंश मात्र मिलते हैं।

19.7.1 आरंभिक गद्य रूपों के उदाहरण

भारत-आर्य स्थानीय भाषाओं के गद्य-साहित्य का **साष्टतम** रूप ऐतिहासिक, विवरणों के रूप में मिलता है। वे भी कुछेक भाषाओं में ही मिलते हैं: उसमें जनसमुदाय के बुरंजी (असम और परवर्ती काल में असमिया में) (पुरानी किस्म की मराठी में) मराठाओं के बखार और मिश्रित हिंदी, पंजाबी में) सिखों की जनम सातियां ऐसे गद्य रूप हैं। राजपूताना की वीर गाथा रचनाएं पद्य में थी, लेकिन मारवाड़ी में एक अद्वितीय गद्य कृति भी मिलती है। यह थी जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह के मंत्री महंत नयमासी द्वारा सत्रहवीं शताब्दी में संकलित और राजपत्रक। यह विवरण महंत नयमासी री ख्यात के नाम से सुपरिचित है, जिसमें सभी प्रमुख राजपूत वंशों का इतिवृत्त मिलता है। इनसे ही संबंधित है जोधपुर राज्य का राजपत्रक, मारवाड़ रा परगनम री विगत, जो एक वैज्ञानिक तथा सांख्यिकीय ग्रंथ

है, जिसका अभिकल्पन इसके पहले की सदी के अबुल फजल के प्रसिद्ध आइन-ए-अकबरी से प्रेरित है।

बुरंजी, बखार, जनमसाखी और ख्याता का गद्यरूप बहुत गूढ़ प्रकार का है। इन गद्य रूपों में कभी-कभार मौलिकता की चमक मिलती है, लेकिन आधुनिक वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति में वह पूर्व अक्षम था।

द्रविड़ भाषाओं के गद्य साहित्य का सुदीर्घ इतिहास और अधिक व्यापक चरित्र था। इन भाषाओं के पुराने साहित्य का एक विशिष्ट रूप था चंपू पद्य और गद्य का यह मिश्रित रूप संस्कृत साहित्य में भी सुपरिचित था। इसके साथ ही सीधा-सरल गद्य साहित्य भी था। कुछ उदाहरण ये हैं:

i) तमिल की क्लासिकीय काव्यकृतियों, सिलप्पतिगारम पर तमिल टीकाएं, कुछेक अपवादों के साथ, सुगठित, प्रांजल गद्य में थीं। ये गद्य-टीकाएं अतीत में आठवीं सदी तक पाई जा सकती हैं, और उनका अस्तित्व इनसे भी पहले माना जा सकता है।

ii) कन्नड़ भाषा के वचन में सरल, अनलंकृत गद्य में वीरशैव उपदेशों की शिक्षाएं मिलती हैं जिनका आरंभ बारहवीं सदी से पाया जाता है। वह समतावादी सामाजिक संदेशों वाला लोकप्रिय धार्मिक आंदोलन था जो समकालीन कर्नाटक के लिंगायत समुदाय का आधार बनता है। इनके प्रवर्तक बासवन्ना के वचन के कुछ उदाहरण यहाँ हैं: "मैं उस दुलहन की भाँति हूँ जिसने शरीर पर सुगंधित तेलों का लेप किया है, अत्यंत भव्य परिधान पहने और अति सुंदर आभूषण धारण किए हुए हैं, लेकिन जो अपने पति का हृदय अपने वश में नहीं कर पाई है।

iii) विजयनगर साम्राजय के पराभव के बाद बिखर से गये तंजोर, मदुरा और पुदुकोट्टै के तमिल शासक समुदाय ने सरल तेलुगु भाषा में काव्य-साहित्य के विकास पर विशेष ध्यान दिया। "दक्षिण परंपरा" के तेलुगु कवियों ने अपनी-अपनी काव्यकृतियों के समान ही गद्य-रचनाओं में भी गौरव का भाव दिखाया। अठारहवीं सदी में मदुरा के कवि समुख वेंकट कृष्णप्पा ने अपना गद्य-कृति जैमिनि-भारत की कलाकृति की संज्ञा दी, जिसको उसकी सुप्रसिद्ध काव्य रचना सारंगधर जैसा ही महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए।

iv) अंत में हम पांडिचेरी के फ्राँसीसी शासक के दीवान आनंद रंगपिल्लै की प्रभापूर्ण तमिल डायरी का उल्लेख करेंगे जिसे उसने 1736 में लिखना आरंभ किया। यह उच्च तमिल गद्य से भिन्न ठेठ भाषा में लिखी जीवंत कृति है। यह वाणिज्य-जीवन की कथाओं वाणिक-कथाओं और फ्रांसीसी बस्तियों की जीवन विधि के विवरणों से परिपूर्ण है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होगा कि आधुनिकता के आरंभ से पहले ही तमिल, कन्नड़ और तेलुगु गद्य समुचित रूप से व्यापक बन चुका था। फिर भी, उन्नीसवीं सदी में इन भाषाओं में विकसित होने वाला गद्य अत्यंत भिन्न था और उपरोक्त प्रतिरूपों पर आधारित नहीं था। कुल मिलाकर, भारत की स्थानीय भाषाओं के नये गद्य ने एक सुविकसित स्तर प्राप्त कर लिया जिसमें वैज्ञानिक, विवेकसम्मत विचारों की समुचित अभिव्यक्ति संभव थी। इस नये गद्य ने भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति के सम्मिलन की प्रक्रिया को भी अभिव्यक्ति दी।

19.7.2 पाश्चात्य प्रभावों का आरंभ

वर्ष 1800 को सुनीति कुमार चटर्जी ने भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन के विकास में केंद्रीय महत्व का माना है। सीरामपुर के बाप्टिस्ट मिशन कालेज और कलकत्ता के फोर्ट विलियम कालेज में संयुक्त रूप से अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओं में मुद्रित गद्य-साहित्य लाना शुद्ध किया।

यह ध्यान देने की बात है कि इस समय से पहले भी—विशेष कर दक्षिण भारत में गद्य रचना एवं मुद्रण से संबंधित, कैथोलिक मिशनरियों के क्रियाकलाप की सुदीर्घ, यद्यपि छुटपुट, परंपरा मिलती है। पुर्तगाली नाविकों तथा व्यापारियों के अभियानों के क्रम में आने वाले जेस्यूट मिशनरियों ने गोवा में 1566 में पहला प्रिंटिंग प्रेस चालू किया। दक्षिण के दो

सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्रण प्रतिष्ठान अवलक्कुड (1679) और त्रांकबार (1712-13) में स्थापित हुए। सोहलवीं, सत्रहवीं और अठारहवीं सदियों में कैथोलिक मिशनरियों द्वारा तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं में मुद्रित पुस्तकों की बाढ़ सी आ गई। उन्होंने बाइबिल का अनुवाद करवाया, ईसाई आदिग्रंथों की रचना की और द्रविड़ भाषाओं में व्याकरण तथा शब्दकोशों का संकलन किया। 1700 में केरल में आने वाले फादर आर्नोस को तो विशेष रूप से याद किया जाता है, जो मूलनिवासियों की भांति ही मलयालम बोल सकता है। उसने मलयालम भाषा में ईसाई धर्म संबंधी विषयों पर मेसिया चरितम जैसी लंबी कविताएं लिखीं। मलयालम व्याकरण तथा शब्दकोश भी उसने बनाया जो अब अप्राप्य है। कैथोलिक मिशनरी गतिविधियों का सर्वाधिक आकर्षित प्रतिफल था दो स्थानीय ईसाइयों—मलप्पन और उसके शिष्य कथनार की सृजनात्मक मलयालम गद्य कृतियां। 1778 में उन्होंने रोम की यात्रा की। मलप्पन में सामाजिक समस्याओं का अनुशीलन करने वाली पहली मलयालम गद्यकृति वेदतर्क्कम (धर्म का तर्क शास्त्र) लिखी। कथनार ने वर्तमान पुस्तकम नामक एक अधिक रोचक कृति की रचना की जो केप आफ गुड होप, ब्राजील और पुर्तगाल के जटिल मार्गों से होते हुए उनकी कष्टसाध्य यात्राओं और रोम में सफल प्रवेश का विवरण है। बहरहाल, द्रविड़ भाषाओं में कैथोलिक मिशनरी प्रयासों का कोई स्थायी प्रभाव नहीं बना, वह एक अलग-थलग सा बना रहा।

यह भी ध्यान में रखने की बात है कि बंगाली गद्य लेखन की दिशा में पुर्तगाली मिशनरियों के लघुतर प्रयास भी हुए थे, लेकिन बंगाली साहित्य पर कोई प्रभाव छोड़े बिना वे विलीन हो गए। भारतीय गद्य साहित्य पर सुव्यवस्थित पाश्चात्य प्रभाव 1800 के पहले नहीं मिलता। इसी वर्ष में एक महत्वपूर्ण संयोग मिलता है एक तो उत्तर भारत के पहले प्रिंटिंग प्रेस सीरामपुर के बाप्टिस्ट मिशन प्रेस की स्थापना इसी वर्ष हुई। दूसरे ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों को भारतीय भाषाओं की शिक्षा देने के लिए वेलेजली ने फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। अपने प्रशासन की अवधि में समूचे भारत में कंपनी के क्षेत्रों के प्रसार की दृष्टि से यह कार्यभार और आवश्यक बन गया था।

सीरामपुर बाप्टिस्ट प्रेस में समर्पित मिशनरी कार्यकर्ता विलियम केरी ने बाइबल के अनुवाद के लिए भारतीय विद्वानों को नियुक्त किया—बंगाली के लिए रामराम बासु असमिया के लिए आत्माराम शर्मा, मराठी के लिए बैजनाथ शर्मा इत्यादि को। बाप्टिस्ट मिशन प्रेस ने मुद्रण के लिए बंगाली, नागरी, फारसी, अरबी और अन्य लिपियों का प्रयोग किया। 1801 और 1830 के बीच इसने असमिया, बंगाली, गुजराती, तमिल और तेलुगु समेत लगभग 50 भाषाओं में मुद्रण कार्य संपन्न किया।

फोर्ट विलियम कालेज में विलियम केरी और जान गिलक्राइस्ट क्रमशः बंगाली और हिंदुस्तानी विभागों के अध्यक्ष बने। उनके अधीन इन भाषाओं तथा अन्य भाषाओं में शिक्षण तथा लेखन कार्य के लिए अनेक भारतीय मुंशी थे। गिलक्राइस्ट ने, जिसका विभाग भारत की सामान्य भाषा का शिक्षण देने के नाते अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था, हिंदी शब्दकोश (1802) की रचना की। एक अधिक प्रखर शिक्षक सिद्ध होने वाले केरी ने बंगाली, मराठी, पंजाबी, तेलुगु और कन्नड़ भाषा के व्याकरणों की रचना की। कालेज की प्रकाशन योजना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग था विभिन्न भाषाओं के शिक्षण के लिए मुंशियों द्वारा पाठ्यपुस्तक लेखन। ऐसे पर्याप्त पाठ्य न होने के कारण यह एक मौलिक प्रयास ही था और नये गद्य को स्वरूप देने की दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम एक संक्षिप्त कार्यकाल में कालेज को पाठ्यपुस्तक प्रकाशन योजना के अंतर्गत उर्दू में 20 पुस्तकें, हिन्दी में 8, बंगाली में 13, और मराठी में 4 पुस्तकें निकलीं। इस सूची के अंतर्गत रामराम बासु की रचना प्रतिपादित्य चरित्र (1801, बंगाली, एक योद्धा हिंदू जमींदार की जीवनी), मीर अमान की पुस्तक बाग-ओ-बहार (1801, उर्दू, चार दरवेशों की अद्भुत साहित्यिक कार्यों की गद्य-गाथा), लल्लूलाल की पुस्तक प्रेमसागर (1802 के आसपास, हिन्दी, भागवत पुराण का गद्य रूपांतर) आती हैं। चुने गये विषयों के अंतर्गत आख्यान, इतिहास, जीवनी-प्रसंग, पत्राचार, यात्रावृत्त और लोकोक्तियां आती हैं।

समग्रता में इन व्याकरण संबंधी पुस्तकों और गद्य-कृतियों का स्वरूप कृत्रिम था और भावी साहित्य पर उनका कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं पड़ा। स्वतः स्फूर्त साहित्यिक रचनाओं का आरंभ बाद में हुआ जिसका बाप्टिस्ट मिशनरियों और फोर्ट विलियम कालेज के मुंशियों के कार्यों से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं था। इन नये विकास-रूपों का संबंध कलकत्ता और बंबई

जैसे महानगरों में अंग्रेजी स्कूल-कालेजों की स्थापना, वर्नाक्यूलर प्रेस के विकास पाठ्यपुस्तक संस्थाओं तथा प्रबुद्ध एवं साहित्यिक संगठनों के उभार से था।

इस नये गद्य साहित्य रूपों में प्रथम, बंगाली, साहित्य, हिंदू कालेज (1817) और कलकत्ता बुक सोसाइटी (1817) जैसे संस्थानों के बढ़ते प्रभाव, समाचार दर्पण (1818), संवाद कौमुदी (1821) और समाचार चंद्रिका (1822) जैसे अखबारों के प्रचार-प्रसार, तथा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रवींद्रनाथ टैगोर और अक्षयकुमार दत्त जैसे लोगों के गंभीर लेखन कार्य का परिणाम था। अलीगढ़ के सैयद अहमद खान द्वारा स्थापित आंग्लो-मोहमदन ओरियंटल कालेज (1877) ने उर्दू गद्य लेखन के एक नई गतिशील समुच्च की रचना की, जिसके अंतर्गत नजीर अहमद, शिबली नुमानी और हाली की कृतियाँ आती हैं। बंगाली और उर्दू भाषा के सापेक्ष विकास में समय का अंतर पाश्चात्य प्रभावों की भिन्न गति के कारण था, नये बंगाली गद्य-साहित्य का पल्लवन पुष्पन 1815-1865 के बीच हुआ था, जबकि नये उर्दू साहित्य गद्य को संवेग मिला उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक में। इसी अवधि में मराठी गद्य ने भी—आधुनिक स्वरूप ग्रहण किया, जो बंबई के एलफिंस्टन कालेज (1835) जैसे संस्थानों की स्थापना, दर्पण (1831), दिग्दर्शन (1841), प्रभाकर, 1842) और ज्ञान प्रकाश (1845) जैसे प्रकाशनों के प्रचार-प्रसार का परिणाम था। मराठी गद्य को अंतिम क्लासिकीय परिष्कार मिला विष्णुशास्त्री चिपलुंकर (1874) की निबंधमाला से। द्रविड़ भाषाओं में मलयालम ने ही पश्चिम के प्रभावों को सर्वाधिक गतिशील चुनौती दी। मलयालम के नये गद्य साहित्य को संवारने का श्रेय उन्नीसवीं सदी के आठवें-नवें दशक में त्रावनकोर की पाठ्यपुस्तक समिति के लिए केरल वर्मा द्वारा लिखी गई पाठ्यपुस्तकों, और केरल मित्रम (1860), केरल पत्रिका (1885) और मलयाली (1886) जैसे समाचार पत्रों को जाता है।

19.8 परिणाम

भारतीय भाषाओं के विकास के आधुनिक भारतीय इतिहास के लिए महत्वपूर्ण प्रतिफल थे। उनका सारांश निम्नांकित रूप में दिया जा सकता है।

i) प्रामाणिक वर्नाक्यूलर भाषा-रूपों के विकास से सामाजिक नेतृत्व शिक्षित मध्य वर्ग के हाथों में आ गया क्योंकि इस नये वर्ग ने ही प्रत्येक स्थानीय भाषा में प्रामाणिक भाषा-रूप की रचना की थी। इस प्रकार मध्यम वर्ग आधुनिक भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों और परवर्ती काल में राजनीतिक आंदोलनों के नेतृत्व पर भी अपना नियंत्रण कर पाया।

ii) उपरोक्त विकास-प्रक्रिया के साथ ही, मध्यमवर्ग से ही संबंधित प्रामाणिक भाषा-रूपों के विकास ने इस वर्ग तथा बोलचाल की उपभाषाओं और लोक साहित्य से जुड़े भारतीय जनसमुदाय के बीच दूरी और बढ़ा दी।

iii) भाषिक विकासक्रम में भी विभेद देखने को मिलता है, जिससे विभिन्न, हिंदू, मुसलमान, सिख, फारसी इत्यादि समुदायों के बीच—विभेद और उग्र बन गये।

iv) एक शिक्षित मध्यम वर्ग का उभार हम पढ़ते हैं जो अपने कार्य-विस्तार की दृष्टि से अखिल-भारतीय था। इस वर्ग के अधीन नया वर्नाक्यूलर गद्य-रूप विवेक सम्मत, वैज्ञानिक चिंतन का माध्यम बना। समाचार पत्र और जनमत उभर कर आये और गद्य साहित्य के माध्यम से प्रबुद्ध विचारों के विकास ने आधुनिक राष्ट्र के निर्माण की आवश्यक पृष्ठभूमि बनाई।

बोध प्रश्न 2

1) भारतीय भाषाओं के विकास में पाश्चात्य प्रयासों का क्या प्रभाव था?

....

....

....

. . . .

. . . .

2) भारतीय भाषाओं के विकास ने राष्ट्रीय आंदोलन के विकास को किस प्रकार प्रभावित किया ?

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

. . . .

19.9 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत आपने देखा:

- मुगल राज्य से ब्रिटिश शासन की ओर संक्रमण के काल में भारतीय भाषाओं, विशेषकर वर्नाक्यूलर, को समरूप मुद्रण-लिपि और नये साहित्य रूपों से लाभ मिला।
- भारतीय भाषाओं के इस विकास पर विभिन्न वर्गों और समुदायों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले भाषा-रूपों के ध्रुवीकरण ने भी छाप छोड़ी।
- उपरोक्त ध्रुवीकरण के बावजूद, जिस प्रक्रिया के अधीन इन भाषाओं का विकास हुआ, उसने भाषाओं को एक सीमा तक एक समता प्रदान की।
- विभिन्न विकास-रूपों के बावजूद भारतीय भाषाएं उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीय आंदोलन के उभार में संप्रेषण का महत्वपूर्ण माध्यम सिद्ध हुई।

19.10 शब्दावली

वर्नाक्यूलर: स्थान विशेष पर सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा।

क्लासिकीय भाषा: पुरा काल में प्रयुक्त भाषा-रूप, जिसका वर्तमान में प्रयोग केवल औपचारिक लेखन के लिए ही किया जाता है।

डायलेक्ट: समुदाय विशेष द्वारा, अथवा क्षेत्र विशेष में प्रयुक्त भाषा का अविकसित रूप।

19.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 19.2
2) देखें उपभाग 19.3.3
3) iii)

बोध प्रश्न 2

i) देखें उपभाग 19.7.2

ii) देखें भाग 19.8